Postal Regn. - RTK/010/2020-22
RNI - HRHIN/2003/10425

ओ३म्

आर्य प्रतिनिधि

आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा का पाक्षिक मुखपत्र

अगस्त 2021 (द्वितीय)

योगीराज श्री कृष्णचन्द्र जी

Email : aryapsharyana@yahoo.in

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

Visit us : www.apsharyana.org

सृष्टि संवत् 1,96,08,53,122
विक्रम संवत् 2078
दयानन्दाब्द 198

आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा
की
मुख-पत्रिका

वर्ष 17 अंक 14

सम्पादक :
उमेद सिंह शर्मा

पत्रिका-शुल्क
देश में
वार्षिक-200 रुपये आजीवन-2000 रुपये
विदेश में
वार्षिक शुल्क 100 डॉलर
आजीवन 400 डॉलर

पत्रिका का स्वामित्व
आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा (रजि०)
सिद्धान्ती भवन, दयानन्दमठ,
गोहाना रोड, रोहतक-124001

सह-सम्पादक
आचार्य सोमदेव

सम्पादकीय विभाग
सिद्धान्ती भवन, दयानन्दमठ, रोहतक
सम्पर्क सूत्र-
चलभाष :-
मो० 89013 87993

॥ ओ३म् ॥

आध्यात्मिक, सामाजिक, राष्ट्रीय चिन्तन एवं वैदिक जीवन मूल्यों की पाक्षिक पत्रिका

आर्य प्रतिनिधि

अगस्त, 2021 (द्वितीय)
16 से 30 अगस्त, 2021 तक

इस अंक में....

1. सम्पादकीय—वेद-प्रवचन 2
2. जिज्ञासा-विमर्श (पाखण्ड) 4
3. विदुर-नीति प्रश्नोत्तरी 6
4. श्रीकृष्ण—जीवन और सन्देश 8
5. योगिराज श्रीकृष्ण 10
6. पसन्द-नापसन्द का आधार—वेद 11
7. श्रीकृष्ण जन्माष्टमी एवं श्रावणी पर्व 12
8. स्वास्थ्य-चर्चा—होमियोपैथी चिकित्सा से हृदय रोग का उपचार 14
9. शेष-भाग 15
10. समाचार-प्रभाग 16

आर्य प्रतिनिधि पाक्षिक पत्रिका के प्रसार में सहयोग दें

'आर्य प्रतिनिधि' पाक्षिक उलट-पलटकर रख देने लायक नहीं, बल्कि गंभीरतापूर्वक पढ़ने योग्य पत्रिका है। यदि आप इसके पाठक बनेंगे तो हमें विश्वास है कि पसन्द भी करेंगे और चाहेंगे कि इसे अन्य लोग भी पढ़ें। कृपया अपने जैसे गम्भीर पाठकों से 'आर्य प्रतिनिधि' पाक्षिक पत्रिका की चर्चा करें, उन्हें इसका ग्राहक बनने के लिए प्रेरित करके ऋषि ऋण से अनृण होवें।

'आर्य प्रतिनिधि' पाक्षिक का वार्षिक शुल्क 200/- रुपये एवं आजीवन शुल्क 2000/- रुपये है।

आप उपरोक्त राशि 'आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा' दयानन्दमठ रोहतक के नाम से बैंक ड्राफ्ट/मनीऑर्डर द्वारा भिजवाकर सदस्य बन सकते हैं।

—सम्पादक

सम्पादकीय...

वेद-प्रवचन

❑ संकलन—उमेद शर्मा, मन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा, दयानन्दमठ, रोहतक

वेदमन्त्र

सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमकृत।
अत्रा सखायः सख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि॥

(ऋग्वेद मण्डल 10, सूक्त 71, मन्त्र 2)

अन्वय-तितउना सक्तुं इव यत्र मनसा पुनन्तः धीराः वाचं अकृत। अत्र सखायः सख्यानि जानते (जानन्ति)। भद्रा लक्ष्मीः एषां वाचि अधि निहिता अस्ति।

अर्थ-जैसे (तितउना) चलनी में छानकर (सक्तुम् इव) सत्तू को साफ किया जाता है, उसी प्रकार (यत्र) जिस विषय में (धीराः) बुद्धिमान् लोग (मनसा) ज्ञानरूपी चलनी द्वारा (वाचम्) वाणी को (पुनन्तः) शुद्ध करके (अकृत) प्रयोग करते हैं (अत्र) वहाँ (सखायः) हितैषी विद्वान् लोग (सख्यानि) हित की बातों को (जानते) समझते हैं। (एषाम् वाचि) उनकी वाणी में (भद्रा लक्ष्मीः[1]) कल्याणप्रदा लक्ष्मी (अधि निहिता) रहती है।

---

1. **लक्ष्मीः**—A good sign, good fortune, prosperity, success, happiness, wealth, riches (Monier M. Willams)

(लक्ष्मीः) ईश्वर का नाम क्यों है, इस पर स्वामी दयानन्द सत्यार्थप्रकाश के पहले समुल्लास में लिखते हैं—

'लक्ष दर्शनांकनयोः' इस धातु से **'लक्ष्मी'** शब्द सिद्ध होता है। **'यो लक्षयति, पश्यति, अंकते, चिह्नयति, चराचरं जगत् अथवा वेदैः आप्तैः योगिभिश्च यो लक्ष्यते सा लक्ष्मीः सर्वप्रियेश्वरः'** जो सब चराचर जगत् को देखता, चिह्नित अर्थात् दृश्य बनाता जैसे शरीर के नेत्र, नासिका और वृक्ष के पत्र, पुष्प, फल, मूल, पृथिवी, जल के कृष्ण, रक्त, श्वेत, मृत्तिका, पाषाण, चन्द्र, सूर्यादि चिह्न बनाता तथा सबको देखता, सब शोभाओं की शोभा और जो वेदादि शास्त्र वा धार्मिक विद्वान् योगियों का लक्ष्य अर्थात् देखने योग्य है इससे उस परमेश्वर का नाम 'लक्ष्मी' है।

ऊपर दोनों उद्धरणों की सहायता से वेदमन्त्र (ऋ० 10.71.2) में आए हुए (लक्ष्मी) शब्द का अर्थ है सौभाग्य अथवा जीवन का लक्ष्य अर्थात् चरम उद्देश्य।

व्याख्या-इस मन्त्र का आरम्भ 'उपमा' से होता है। सक्तु अर्थात् सत्तू और तितउ अर्थात् चलनी उपमाएँ हैं। 'वाचं' वाणी और 'मनस्', बुद्धि उपमेय हैं। समस्त वाक्य को कहेंगे 'उपमान प्रमाण।' न्यायदर्शन में गोतम महामुनि चार प्रमाणों का उल्लेख करते हैं—(1) प्रत्यक्ष, (2) अनुमान, (3) उपमान और (4) शब्द। इन प्रमाणों द्वारा ही मनुष्य को ज्ञान की उपलब्धि होती है। इनमें मुख्य या मौलिक प्रमाण प्रत्यक्ष ही है। **'प्रत्यक्षे किं प्रमाणम्'** अर्थात् जो वस्तु प्रत्यक्ष है उसके लिए अन्य प्रमाणों की आवश्यकता नहीं। इससे यह सिद्ध होता है कि जब **प्रत्यक्ष उपस्थित न हो** तभी दूसरे प्रमाणों की आवश्यकता पड़ती है। इस विषय में तर्कवादियों ने प्रायः भूल की है। कुछ का कथन है कि जिसका प्रत्यक्ष नहीं होता जैसे ईश्वर, उसकी प्रत्यक्ष के अभाव में अन्य प्रमाणों द्वारा सिद्धि भी कैसे होगी, क्योंकि अन्य प्रमाणों का आधार तो 'प्रत्यक्ष' है। जब आधार ही नहीं तो आधेय कैसा? यह युक्ति प्रायः जैन आदि नास्तिकों ने आस्तिक्य के विरोध में दी है परन्तु आनुषंगिक रूप में यहां हम स्पष्ट कर दें कि अनुमान आदि प्रयोग ही वहाँ होता है जहाँ 'प्रत्यक्ष' न लग सकता हो। यह ठीक है कि अनुमान आदि शेष **प्रमाणों का प्रमाणत्व** प्रत्यक्ष प्रमाण के आधार पर है परन्तु प्रमाण और प्रमेय में भेद है, जो प्रमेय प्रत्यक्ष हो गया उसके लिए दूसरा प्रमाण खोजने की आवश्यकता नहीं। 'तुला' अर्थात् तराजुएँ किसी मुख्य तराजू के आधार पर बनाई जाती हैं, परन्तु सब वस्तुएँ मूल तराजू से ही नहीं तोली जा सकतीं, जब मुख्य तराजू नहीं मिलती तभी दूसरी तराजुओं का प्रयोग होता है।

'प्रत्यक्ष' और 'उपमान' का यह सम्बन्ध दिखाने के पश्चात् देखना चाहिए कि 'उपमान' है क्या? साधारणतया उपमा और उपमेय में 'साधर्म्य' (समान गुण) होना चाहिए परन्तु संसार की कोई दो वस्तुएँ ऐसी नहीं जिनमें साधर्म्य न हो। सुअर की पूंछ और हाथी के माथे में भी साधर्म्य है अर्थात् दोनों पंचभूतों के बने पदार्थ हैं परन्तु कभी किसी ने हाथी के माथे के लिए सुअर की पूछ की उपमा नहीं दी,

क्योंकि गोतम जी ने उपमान के जो लक्षण दिये हैं उनसे सुअर की पूंछ और हाथी का माथा लक्षित नहीं होते। **'प्रसिद्धसाधर्म्यात् साध्यसाधनमुपमानम्'** (न्यायदर्शन 1.1.6) यहाँ (साधर्म्य) के साथ 'प्रसिद्ध' शब्द का विशेषण देना बड़े महत्त्व की चीज है। इसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। साधर्म्य ऐसा हो जो झट से दिखाई दे जाए। इसके लिए उपमा में दो गुण होने चाहिएँ—एक तो वह स्थूल हो, दूसरे बहु-परिचित। अज्ञात उपमेय को ज्ञात उपमा से नापते हैं। यदि उपमा अज्ञात हो तो उससे उपमेय के जानने में सुगमता न होगी। जैसे कोई कहे कि आपके घर पर ठहरने में मुझे स्वर्ग का जैसा आनन्द हुआ। यह 'उपमा' स्वर्ग है और 'उपमेय' निवास का सुख है। स्वर्ग अज्ञात है, प्रसिद्ध साधर्म्य नहीं, अत: उपमा अनुचित है। वेद में बहुत-सी उपमाओं का प्रयोग हुआ है। वहाँ सर्वत्र उपमाएँ उपमेयों की अपेक्षा अधिक स्थूल और अधिक परिचित है।

इस मन्त्र में सत्तू और चलनी (सक्तु और तितउ) घर की दैनिक वस्तुएँ हैं। ये सुपरिचित हैं। इन्हीं की उपमाओं का प्रयोग 'वाचं' और 'मनसा' दोनों सूक्ष्म उपमेयों के लिए किया गया है। यद्यपि साधारण अर्थों को समझने के लिए हमारे इस लम्बे व्याख्यान की आवश्यकता नहीं थी, परन्तु वेद में तो सभी विद्याओं का समावेश है। वेद साहित्य और दर्शन के विषय में भी कहीं प्रत्यक्ष और कहीं परोक्षरूप से एक आदर्श प्रस्तुत करते हैं, अत: हमने आवश्यक समझा कि कुछ प्रसंग से बाहर होते हुए भी एक जटिल प्रश्न पर कुछ व्यावहारिक प्रकाश डाल दें। इससे वेदों के साहित्यिक अलंकारों की शोभा की भी आभा का आनन्द मिलता है।

अब मन्त्र की मुख्य व्याख्या पर ध्यान दीजिए। उपमान से ही आरम्भ करें। सत्तू को छानने के लिए 'तितउ' चलनी या सूप का प्रयोग किया जाता है। क्यों? बिना छाने हुए सत्तू का क्यों प्रयोग नहीं करते? दो कारणों से। एक तो इतर पदार्थ न मिला हो, जैसे कूड़ा, तिनके या रेत आदि। तितउ का काम है कि वह असली सत्तू से इतर पदार्थ को निकालकर फेंक दे। दूसरे, सत्तू की भूसी या वह कर्कश अंश दूर हो जाए जिसके कारण सत्तू को पचाने में कठिनाई पड़ती हो। सत्तू शुद्ध हो और कर्कश न हो।

वाणी में भी दो गुण होने चाहिएँ। वह सत्य और प्रिय हो। **'सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्'** अप्रिय सत्य 'सत्य' होते हुए भी निषिद्ध है, क्योंकि उसमें कर्कशता है। सत्तू के पीसने में त्रुटि है। सत्तू इतना मोटा पिसा है कि वह खाने में नहीं आता। जो वाणी उचित सावधानी के साथ नियोजित नहीं की गई वह सत्य होते हुए भी लड़ाई का कारण होती है। काने को काना कहकर पुकारना लड़ाई मोल लेना है। सत्तू में इतर पदार्थ की मिलावट के समान ही सत्य वाणी में इधर-उधर की ऊटपटांग मिला देना है। इसलिए असत्य प्रिय हो तब भी न बोले। राजदरबारों में नित्य ही प्रिय असत्य बोला जाता है। इससे मनोरंजन तो होता है परन्तु साथ ही हानि बहुत होती है। इंग्लैण्ड के एक राजा कैन्यूट (Canute) की कहानी प्रसिद्ध है। उसके खुशामदी दरबारी कहा करते थे कि महाराज, आपकी आज्ञा तो समुद्र भी मानता है। राजा ने एक दिन आज्ञा दी कि उसकी कुर्सी एक ऐसे स्थान पर रख दी जाए जहाँ समुद्र की तरंगों का आवेग हो। दरबारियों को आशंका हुई। वे बोले, "महाराज! यहाँ तो समुद्र की लहरें आयेंगी?" राजा बोला, "समुद्र से कह दो कि अपनी तरंगें रोक ले।" दरबारियों ने कहा, "समुद्र कैसे मानेगा?" राजा ने कहा, "तुम तो कहा करते थे कि समुद्र राजा का आज्ञाकारी है! तुम ऐसा झूठ क्यों बोला करते हो?" दरबारी लज्जित हो गये। अन्य राजा भी इसी प्रकार करते तो उनको कभी धोखा न खाना पड़ता।

इसलिए वेदमन्त्र कहता है कि 'वाचं' अर्थात् वाणी को छानकर बोलो। उसमें से **असत्यता** (इतर पदार्थ foreign matter) और अप्रियता (कर्कशता indigestible matter) को निकाल दो। **क्रमश: अगले अंक में....**

'आर्य प्रतिनिधि' पाक्षिक पत्रिका की विज्ञापन दरें—

1. अंतिम कलर पेज	रु० 15,000/-
2. 2-3 कलर पेज	रु० 12,000/-
3. अन्दर कलर पेज	रु० 10,000/-
4. ब्लैक एण्ड ह्वाइट फुल पेज	रु० 5,000/-
5. ब्लैक एण्ड ह्वाइट हॉफ 1/2 पेज	रु० 3,000/-
6. ब्लैक एण्ड क्वाटर 1/4 पेज	रु० 1,500/-
7. ब्लैक एण्ड ह्वाइट 1/8 पेज	रु० 500/-

व्यवस्थापक—'आर्य प्रतिनिधि' पाक्षिक,
दयानन्दमठ, रोहतक-124001
मो० 7206865945, 8901387993

जिज्ञासा-विमर्श (पाखण्ड)

❑ आचार्य सोमदेव, मलारना चौड़, सवाई माधोपुर (राजस्थान)

गतांक से आगे....

जब कोई वृद्ध व्यक्ति हमारे पास आये हम उसका किस प्रकार सत्कार करें, उदाहरण के लिए यहाँ मनु का श्लोक लिखते हैं—

अभिवादयेद् वृद्धांश्च दद्याच्चैवासनं स्वकम्।
कृताञ्जलिरुपासीत गच्छतः पृष्ठतोऽन्वियात्॥

(मनु० 4.154)

सदा विद्या वृद्धों और वयोवृद्धों को नमस्ते अर्थात् उनका मान्य किया करे। जब वे अपने समीप आवें, तब उठकर मान्य पूर्वक ले अपने आसन पर बैठावें और हाथ जोड़कर आप समीप बैठें, पूछें, वे उत्तर देवें और जब जाने लगें तब थोड़ी दूर पीछे-पीछे जाकर नमस्ते कर विदा किया करें।

अपने बड़ों से वार्तालाप का शिष्टाचार क्या हो, इस विषय में महर्षि मनु कहते हैं—

प्रतिश्रवणसम्भाषे शयानो न समाचरेत्।
नासीनो न च भुञ्जानो न तिष्ठन्न पराङ्मुखः॥

(मनु० 2.195)

प्रतिश्रवण अर्थात् गुरु-बड़ों की बात या आज्ञा का उत्तर देना या स्वीकृति देना और बातचीत, ये सब लेटे हुए न करें, न बैठे-बैठे, न कुछ खाते हुए, न दूर खड़े होकर और न मुंह फेरकर बातें करें इत्यादि बहुत-सी व्यवहार की बातें महर्षि मनु ने कही हैं, जिनसे व्यक्ति व्यवहार-कुशल, सुखी, धार्मिक आदि बनता है। महर्षि मनु के पश्चात् महर्षि पतञ्जलि अपने योगदर्शन में किस प्रकार व्यक्ति लोक में व्यवहार करे—यह अपने एक सूत्र के द्वारा बता रहे हैं—**मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम्।** (योगदर्शन 1.33)

संसार में चार प्रकार के व्यक्ति मिलते हैं, सुखी, दुखी पुण्यात्मा और पापात्मा। इन सभी से यथायोग्य व्यवहार अर्थात् सुखी व्यक्तियों से मित्रता का भाव रखना, न कि द्वेष-शत्रुता का भाव, दुखियों के प्रति दया, करुणा करनी, घृणा न करनी, पुण्यात्माओं को देखकर उनसे मिलकर हर्षित होना, खिन्न न होना, पापात्मा, दुर्जन व्यक्तियों के प्रति उपेक्षा अर्थात् न उनसे मित्रता और न ही शत्रुता रखना। ऐसा करने से व्यक्ति का मन प्रसन्न रहता है, वह दुःखी नहीं होता। धर्म और अपने कर्त्तव्य के प्रति अधिक अग्रसर होता है।

अब महर्षि कणाद को देखिये, वे अपने वैशेषिक दर्शन में पदार्थ विद्या सिखाने के साथ-साथ व्यवहार विद्या सिखा रहे हैं। हमें किससे लेना चाहिए, किसको देना चाहिये, कैसे लेना चाहिए, कैसे देना चाहिए, विपत्ति में छोटे बड़ों को क्या सहयोग करे, बराबर वाले परस्पर क्या करें, हमारे सामने कोई हीन है, छोटा है, योग्यता से कम है तो विपत्ति में हम उसके साथ कैसे वर्तें वा वह कैसा बर्ताव करे आदि बातें वैशेषिक दर्शन के छठे अध्याय में हैं।

और देखिये, आयुर्वेद के ऋषि आयुर्वेद में औषध विज्ञान, शरीर विज्ञान बताने, सिखाने से पहले व्यवहार विज्ञान बता-सिखा रहे हैं। वे अपने चरक शास्त्र में सद्वृत्त नाम का प्रकरण लिखकर उत्कृष्ट मानव बनाना चाहते हैं। हम कैसे वस्त्र धारण करें, केश विन्यास कैसा हो? कैसे बैठना-चलना हो? क्या खावें, कैसे खावें, कितना खावें, कब कैसा खावें? सभा में बैठकर नखों को न चटकावें, उनको दांतों से न काटें। व्यर्थ बैठकर लोष्ठमर्दन न करें, उत्तमों की निन्दा न करें, हीन व्यक्तियों का संग न करें, उनके पास न बैठें-इत्यादि बातें महर्षि चरक अपने जीवन को सरल बनाने के लिए बता रहे हैं।

अन्त में हम आर्यों के प्राण महर्षि दयानन्द का उदाहरण देते हैं। वैसे तो महर्षि के सभी ग्रन्थों में उत्तम व्यवहार की बातें मिलती हैं। इतना सब होते हुए भी महर्षि दयानन्द ने हमें व्यवहार को सिखाने के लिए 'व्यवहारभानु' नामक पुस्तक लिखकर दी है। इस पुस्तक की भूमिका में ही बता दिया गया कि मनुष्य को सुख लाभ कैसे प्राप्त होता है और किस आचरण से व्यक्ति दुःखी होकर अपनी हानि कर लेता है? व्यक्ति का सम्मान-सत्कार कैसे होता है और किन कारणों से तिरस्कृत हो जाता है? किस मनुष्य का

विश्वास और मान्य शत्रु भी करते हैं और कौन है वह कि जिसका विश्वास और मान्य मित्र भी नहीं करते? किस व्यक्ति का कार्य नहीं बिगड़ता और कौन अपना कार्य बिगाड़ बैठता है?

इस पुस्तिका में महर्षि ने बालक से लेकर वृद्धपर्यन्त और राजा से लेकर प्रजा तक सबका व्यवहार लिखा है और ग्रन्थ के अन्त में तो महर्षि जैसे प्रतिज्ञा कर रहे हैं कि "जो मनुष्य विद्या कम भी जानता हो, परन्तु पूर्व दुष्ट व्यवहारों को छोड़कर धार्मिक होके खाने-पीने, बोलने-सुनने, बैठने-उठने, लेने-देने आदि व्यवहार सत्य से युक्त यथायोग्य करता है, वह कहीं कभी दु:ख को प्राप्त नहीं होता और जो सम्पूर्ण विद्या पढ़ के पूर्वोक्त उत्तम व्यवहारों को छोड़ के दुष्ट कर्मों को करता है, वह कहीं कभी सुख को प्राप्त नहीं हो सकता।" उत्तम व्यवहार करने वाला ही सुखी हो सकता है, अन्य नहीं, ऐसा महर्षि का निश्चय है।

सभी ऋषियों ने अपने ग्रन्थों में मनुष्यमात्र को व्यवहार कुशल, धार्मिक, उत्साही, सुख, आस्तिक बनाने के लिए लिखा है। इन आधुनिक व्यवहार सिखाने वालों से व्यक्ति कुछ व्यवहार कुशल हुए हों, यह मान सकते हैं, किन्तु इनसे कितने मनुष्य आस्तिक-धार्मिक बनते हैं, बने हैं, यह विचारणीय है।

यह हमने ऋषियों का दिग्दर्शन मात्र करवाया है। इसी में स्थिर बुद्धि होकर स्वयं विवेचना करें कि श्रेष्ठ-उत्तम व्यवहार शिक्षक ऋषि हैं अथवा ये आधुनिक सभा-सेमिनार करने वाले?

जिज्ञासा 9. मेरी जिज्ञासा का विषय है **'देहदान'**।

मृत्यु के पश्चात् दाह संस्कार प्राचीन काल या वैदिक काल से ही किया जाता है, ताकि पर्यावरण शुद्ध रहे। आजकल हर बड़े-बड़े शहरों में **विद्युत् शवदाह गृह** भी बनाये जाते हैं, ताकि समय कम लगे और मरघटों पर जो लूट होती है, उससे भी जनता को निजात मिले। साथ ही वृक्षों की भी रक्षा हो, जो कि पर्यावरण संतुलन के महत्त्वपूर्ण अंग हैं।

आजकल समाचार पत्रों में देहदान के लिए मेडिकल कॉलेजों द्वारा विज्ञापन निकलते रहते हैं कि अधिक से अधिक लोग नेत्रदान एवं देहदान करें। कई संस्थाएं भी इस कार्य में कार्य कर रही हैं, ताकि मेडिकल के छात्रों को मानव शरीर पढ़ाई के लिए उपलब्ध हो।

अत: मेरी जिज्ञासा है कि आप विद्वानों की इस विषय पर क्या राय है? देहदान करना चाहिए या नहीं? क्या ऋषि दयानन्द जी ने इस विषय पर कहीं कुछ लिखा है या नहीं? उत्तर की प्रतिक्षा में।

—आशा आर्या, 'अभिनन्दन' 14, मोहन मेकिन्स रोड, डालीगंज, लखनऊ

समाधान-आप देहदान के विषय में हमारा मत जानना चाहती हैं कि देहदान किया जावे या न किया जावे, तो हमारे विचार में देहदान किया जा सकता है, कर सकते हैं, यदि उसके सदुपयोग होने की संभावना अधिक हो तो। ऐसा करने से उस शरीर के द्वारा चिकित्सा शास्त्र के छात्र के शरीर विज्ञान को जानेंगे और अन्यों को जनायेंगे। पहले चिकित्सा महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों में शरीर विज्ञान को साक्षात् जानने के लिए प्राय: अनाथ (लावारिस) शव का प्रयोग करते थे, देहदान का बहुत कम प्रचलन था। उस समय चिकित्सा शास्त्र को पढ़ने वाले छात्र कम होते हुए भी उन शवों से कम पूर्ति हो पाती थी, किन्तु आज इस शास्त्र को पढ़ने वाले (डॉक्टर बनने वाले) बहुत अधिक हो गये, इस कारण शव भी अधिक चाहिए, जो कि लावारिस बहुत कम मिलते हैं। पूर्ति के लिए कुछ चिकित्सा महाविद्यालय आदि (मेडिकल कॉलेज) विदेशों से शव खरीदते हैं जो कि बहुत महंगा पड़ता है। इस कारण आजकल देहदान के लिए विज्ञापन आदि के द्वारा प्रोत्साहित किया जाता है, किया जा रहा है, सो गलत नहीं है। जीते हुए शरीर के द्वारा परोपकार होता रहे और मरने के बाद शरीर परोपकार के काम आ जाये तो अच्छा ही है। किन्तु ऐसा सब कर भी नहीं सकते, नहीं करते, यदि सब करने लग जायें तो चिकित्सा संस्थान अपनी आवश्यकता से अधिक शवों को लेंगे भी नहीं। क्रमश: अगले अंक में...

'आर्य प्रतिनिधि' पाक्षिक समाचार-पत्र की सदस्यता ग्रहण कर तथा धार्मिक एवं सामाजिक आयोजनों में 'आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा' को सहयोग राशि भेजकर वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार में सहभागी बनिये।
सम्पर्क—मो० 08901387993

विदुर-नीति प्रश्नोत्तरी

❑ संकलन—कन्हैयालाल आर्य, उपप्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा, रोहतक

गतांक से आगे....

इस पद्य के माध्यम से महात्मा विदुर जहाँ शीलवान् पुरुष के जीवन की सार्थकता का वर्णन कर रहे हैं, वहाँ राजा धृतराष्ट्र को यह चेतावनी भी दे रहे हैं कि तुम और तुम्हारे पुत्र शीलवान नहीं हो, इसलिए तुम्हारे जीने का कोई प्रयोजन नहीं है, यह धन, वैभव, राज्य, ये बन्धु-बान्धव तुम्हारे जीने को सार्थक नहीं कर सकते अर्थात् पुरुष में शील (उत्तम स्वभाव) ही प्रमुख है।

प्रश्न 31. धनी, मध्यम श्रेणी वाले एवं दरिद्र के भोजन में क्या अन्तर है?

उत्तर-(1) धनोन्मत्त (तामस स्वभाव वाले) मनुष्यों के भोजन में मांस प्रधान होता है यह तामस भोजन कहलाएगा।

(2) मध्यम श्रेणी के लोगों का भोजन में गोरस-दूध, दही की प्रधानता होती है।

(3) दरिद्र लोगों के भोजन में तैल की प्रधानता होती है।

दरिद्र सदा अति उत्तम पौष्टिक भोजन ही खाते हैं, क्योंकि उनके भोजन में विशेष स्वाद तो भूख उत्पन्न करती है, जो धनियों के लिए सर्वथा दुर्लभ है। भूख में जो खाया जाएगा, स्वादिष्ट लगेगा। भूख के बिना स्वादिष्ट भोजन भी स्वादरहित हो जाएगा। धनी लोग मन्दाग्नि का शिकार होते हैं, उन्हें भूख कम लगती है।

प्राय: संसार में धनवानों में भोजन को पचाने की शक्ति नहीं होती। दरिद्रजनों के पेट में भोजन के रूप में काष्ठ जैसे कठोर भोज्य पदार्थ भी पच जाते हैं, इसलिए ग्रामीण जन इस बात को कहते हैं कि भूख है तो 'लक्कड़ हजम, पत्थर हजम'। भूख दरिद्र को लगती है। धनवान् तो भूख बढ़ाने के लिए भी विभिन्न प्रकार की औषधियाँ, चूर्ण आदि प्रयोग करता है। परन्तु निर्धन रूखे सूखे भोजन को भी पचा लेता है।

महाभारत के प्रसिद्ध टीकाकार नीलकण्ठ ने यहाँ कहा है कि ऐश्वर्य प्राप्ति की अपेक्षा शील की रक्षा करते हुए दारिद्र्य भी प्राप्त हो जाये तो भी वह अच्छा है, क्योंकि दरिद्र पुरुष के भोजन में तो स्वाद आता है, वह धनाढ्यों के लिए अत्यन्त दुर्लभ है।

प्रश्न 32. निर्धन, मध्यम एवं उत्तम जनों को किस चीज का भय लगता है?

उत्तर-(1) दरिद्र पुरुषों को भय है—रोजगार का अभाव अर्थात् दरिद्रजनों को जीविका न मिलने का भय होता है।

(2) मध्यम कोटि के जनों को मृत्यु से भय लगता है।

(3) उत्तम कोटि के जनों को अपमानित होने का भय लगता है।

विशेष—महर्षि दयानन्द सरस्वती ने यहाँ मनुस्मृति के उदाहरण से सम्मान और अपमान को दूसरे दृष्टिकोण से प्रस्तुत करते हुए इसकी तुलना इस प्रकार की है—

सम्मानाद् ब्राह्मणो नित्यमुद्विजेत विषादिव।
अमृतस्येव चाकाङ्क्षेदवमानस्य सर्वदा॥

(मनुस्मृति 2/162)

ब्राह्मण (विद्वान्, संन्यासी, योगी) सम्मान, मान को विष के समान माने और अपमान को अमृत के समान आकांक्षा करें। यही बात विद्यार्थी के लिए भी कही गई है। ब्रह्मचर्यादि आश्रमों के लिए भी यही कहा है कि भिक्षा मांगते समय भी कभी मान की इच्छा न करें

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने 'संस्कारविधि' में इसकी व्याख्या इस प्रकार की है—

"संन्यासी जगत् के सम्मान से विष के तुल्य डरता रहे और अमृत के समान अपमान की चाहना करता रहे। क्योंकि जो अपमान से डरता और मान की इच्छा करता है, वह प्रशंसक होकर मिथ्यावादी और पतित हो जाता है। इसलिए चाहे निन्दा, चाहे प्रशंसा, चाहे मान, चाहे अपमान, चाहे जीना और मृत्यु, चाहे हानि, चाहे लाभ हो, चाहे कोई प्रीति करे, चाहे कोई वैर करे, चाहे अन्न, पान, वस्त्र, उत्तम स्थान न मिले, चाहे शीत, उष्ण ही क्यों न हो इत्यादि सबको सहन करे और अधर्म का खण्डन और धर्म का मण्डन सदा करता रहे। इससे परे उत्तम धर्म किसी को न माने।"

सत्यार्थप्रकाश में ऋषि दयानन्द जी ने लिखा है— ''वही ब्राह्मण समग्र वेद और परमेश्वर को जानता है जो प्रतिष्ठा से विष के तुल्य सदा डरता है और अपमान की इच्छा अमृत के समान किया करता है।''

मनुस्मृति में जो निर्देश है वह, विद्यार्थी (ब्रह्मचारी) के लिए है। विद्यार्थी यदि सम्मान के चक्र में पड़ जाएगा तो विद्या से वंचित रह जायेगा, अतः विद्यार्थी को मान-अपमान रूपी द्वन्द्व को सहन करने वाला होना चाहिए।

यहाँ इस पद्य का मनुस्मृति से विरोध नहीं समझना चाहिए क्योंकि दोनों का प्रकरण भिन्न-भिन्न है, दोनों के लक्ष्य व्यक्ति भिन्न-भिन्न हैं। विदुर नीति में सांसारिक पुरुषों के तीन विभाग करके श्रेष्ठों को अपमान का भय लिखा है, जो उचित है।

नीति ग्रन्थों में कहा है—

अधमा धनमिच्छन्ति धनमानं च मध्यमाः।
उत्तमा मानमिच्छन्ति मानो हि महतां धनम्॥

अधम लोग धन की इच्छा करते हैं, मध्यम कोटि के लोग धन और मान चाहते हैं, परन्तु उत्तम जन मान की ही अच्छा करते हैं, क्योंकि सज्जनों का धन तो मान ही होता है।

प्रश्न 33. सबसे निन्दिततम मद कौन-सा है?

उत्तर-सुरापान (मद्यपान) पीने से भी नशा होता है, परन्तु ऐश्वर्य का नशा सबसे बुरा नशा होता है। ऐश्वर्य के मद में मनुष्य पतित=भ्रष्ट हुए बिना होश में नहीं आता अर्थात् उसका पतन अवश्यम्भावी है।

ऐश्वर्य रूपी मद में भ्रान्त हुए पुरुषों के कार्यकलापों को देखकर प्राचीन पुरुषों ने उससे बचने के लिए विविध प्रकार के कथानोपकथन किये हैं।

पौराणिक जगत् में लक्ष्मी (ऐश्वर्य की अधिष्ठात्री देवी) की सवारी उल्लू बताई है जो प्रकाश से दूर रहना चाहता है, अन्धकार को पसन्द करता है। इसका भाव यह है कि लक्ष्मी जिसके घर में निवास करती है वह प्रायः उल्लू के सदृश अववेकी बन जाता है। तभी तो तो हिन्दी के किसी कवि ने कहा है—

कनक-कनक ते सौ गुनी मादकता अधिकाय।
एके खाये बौराय नर दूजे पाये बौराय॥

कनक=धतूरा जिसे खाकर मनुष्य होश खो बैठता है। कनक=स्वर्ण=सम्पत्ति, जिसे पाकर मनुष्य होश खो बैठता है। अविनीत पुरुषों की सम्पत्ति पाने से जो अनर्थ होता है यह निर्देश उसके लिए है। विनीत पुरुष सम्पत्ति को पाकर भी उससे निर्लिप्त रहते हैं।

यहाँ विदुर जी धृतराष्ट्र जी को यह कह रहे हैं कि तुम राज्य, सम्पत्ति, ऐश्वर्य पाकर अविवेकी हो गये हो, पागल हो गये हो। अपने आपको संभालो और विवेकी बनो।

प्रश्न 34. जो व्यक्ति इन्द्रियों के अधीन रहता है उसकी क्या स्थिति होती है?

उत्तर-जो व्यक्ति अपनी इन्द्रियों (1) रूप (2) रस (3) गन्ध (4) स्पर्श (5) शब्द के अधीन रहता है, वह उसी प्रकार तिरस्कृत होता है जिस प्रकार नक्षत्रादि सूर्य रूपी ग्रह से तिरस्कृत किये जाते हैं अर्थात् अपने विषयों में वर्तमान असंयमित इन्द्रियों द्वारा यह जगत् पीड़ित हो रहा है जैसे ग्रह=सूर्यादिकों के द्वारा नक्षत्र आक्रान्त होते हैं।

जो मनुष्य सरलता से अपनी ओर आकर्षित करने वाली पांच इन्द्रियों के द्वारा वश में हुआ है उसकी आपत्तियाँ बराबर उसी प्रकार बढ़ती जाती है जैसे शुक्ल पक्ष में चन्द्रकलाएँ बढ़ती जाती है।

यहाँ महात्मा विदुर जी राजा धृतराष्ट्र को यह समझा रहे हैं कि एक तो तुम ऐश्वर्य रूपी मद में उन्मत्त हो, दूसरा तुम और तुम्हारे पुत्र अजितेन्द्रिय हैं, इसलिये निश्चित रूप से तुम आपत्ति को प्राप्त करोगे।

प्रश्न 35. कौन-सा राजा नाश को प्राप्त होता है?

उत्तर-जो राजा स्वयं को अथवा अपने मन को बिना जीते मन्त्रियों को जीतना चाहता है अर्थात् मन्त्रियों को अपने अनुकूल करना चाहता है तथा मन्त्रियों को बिना वश में किये शत्रुओं को जीतना चाहता है वह राजा अजितेन्द्रिय माना जाता है। वह राजा शीघ्र ही नाश को प्राप्त होता है।

यहाँ यह प्रेरणा दी गई है कि यदि हमने अपनी इन्द्रियों पर विजय न पाई तो हम अपने साथियों, संगियों, सम्बन्धियों को सहायक नहीं बना पायेंगे। यदि वे सहायक नहीं बनेंगे तो अपने बाह्य शत्रुओं पर कैसे विजय पा सकेंगे। यहाँ शत्रु से तात्पर्य काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार से भी है जब ये शत्रु विजित ही नहीं होंगे तो हमारा जीवन निरर्थक हो जायेगा।

क्रमशः अगले अंक में...

श्रीकृष्ण—जीवन और सन्देश

❑ रामनिवास 'गुणग्राहक' मो० 9971171797

श्रीकृष्ण का जीवन परिचय मूलत: हमें महर्षि वेदव्यास कृत 'महाभारत' और गीतगोविन्द के रचयिता पं० जयदेव के भाई पं० बोबदेव के लिखे हुए 'भगवत-पुराण' नामक ग्रन्थों से मिलता है। जिन्होंने इन दोनों ग्रन्थों को पढ़ा है, वे जानते हैं कि इन दोनों ग्रन्थों में श्रीकृष्ण के जीवन के बारे में जो कुछ लिखा है वह एक दूसरे के साथ कहीं भी मेल नहीं खाता। इस तथ्य को सर्वप्रथम महर्षि देवदयानन्द सरस्वती की दिव्य दृष्टि ने देखा और उन्होंने अपने स्वभाव के अनुसार बड़ी निर्भीकता से अपने अमरग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' में इसका उल्लेख निम्न शब्दों में किया है—"देखो! श्रीकृष्ण जी का इतिहास महाभारत में अति उत्तम है। उनका गुण, कर्म, स्वभाव आप्त पुरुषों के सदृश है, जिसमें कोई अधर्म का आचरण, श्रीकृष्ण जी ने जन्म से मरण पर्यन्त बुरा काम कुछ भी किया हो, ऐसा नहीं इस भागवत बनाने वाले ने मनमाने अनुचित दोष लगाए हैं। दूध, दही, मक्खन आदि की चोरी, कृष्णा दासी ने समागम पर स्त्रियों से रास-मण्डल आदि मिथ्या दोष भी श्रीकृष्ण जी की बहुत-सी निन्दा करते हैं। जो यह भागवत न होता तो श्रीकृष्ण जी के सदृश महात्माओं की झूठी निन्दा क्योंकर होती?" इस महत्त्वपूर्ण स्पष्टीकरण के साथ ही ऋषि दयानन्द ने एक रहस्योद्घाटन किया है कि पं० बोबदेव ने स्वयं स्वीकार किया है कि भागवत पुराण मैंने लिखा है। स्वामी जी लिखते हैं कि उसके तीन पन्ने हमारे पास हैं।

महाभारत एक ऋषि ग्रन्थ है, इसमें आता है कि पितामह भीष्म जैसा वयोवृद्ध और ज्ञानवृद्ध पुरुष भरी सभा में घोषणा करता है—"मैंने बहुत से ज्ञानवृद्ध महात्माओं का संग किया है, वे सब श्रीकृष्ण के सत्कर्मों की प्रशंसा करते हैं। हम श्रीकृष्ण के यश और शौर्य पर मुग्ध हैं। वेद-वेदांग का ज्ञान और बल पृथ्वीतल पर इनके समान किसी और में नहीं है।" महर्षि वेदव्यास के ऐसे गौरवपूर्ण शब्दों के होते हुए पुराणों के पतित विचारों को मानना-मनवाना बुद्धिमानों व सज्जनों के लिए उचित नहीं लगता। श्रीकृष्ण से सच्चे प्रेम करने वालों का पहला कर्त्तव्य है कि वह श्रीकृष्ण जी के बारे में जानने के लिए महाभारत को अवश्य पढ़े। श्रीकृष्ण एक ऐसे महामानव का नाम है जो महाभारत जैसे भीषण युद्ध का महानायक तो कहलाया, मगर उस सारे युद्ध में कोई महारथी तो क्या, सामान्य सैनिक भी अपने हाथों से नहीं मारा। महात्मा विदुर का एक नीतिवाक्य इस पर बड़ा सटीक बैठता है—'**बुद्धि श्रेष्ठानि कर्माणि बाहु-मध्यमानि भारत।**' अर्थात् बुद्धि द्वारा किये गए कर्म श्रेष्ठ और बाहुबल से किये गये कार्य मध्यम स्तर के होते हैं। सब जानते हैं कि सम्पूर्ण महाभारत में श्रीकृष्ण ने केवल बुद्धि बल से ही काम लिया था, बाहुबल से नहीं। श्रीकृष्ण के बुद्धि-बल उन्हें संसार का सर्वोत्तम कूटनीतिज्ञ बना दिया था। शुक्राचार्य 'शुक्रनीति' में लिखते हैं—'**न कूटनीतिक भवत् श्रीकृष्ण-सदृशो नृप:**' (14.12.97) पाण्डवों को भी श्रीकृष्ण की रीतिमत्ता और रण-चातुर्य पर अटल भरोसा था। युधिष्ठिर के प्रथम राजसूय-यज्ञ की मन्त्रणा के समय जरासन्ध को मारने की बात सामने आई तो महाराज युधिष्ठिर ने कहा—हे कृष्ण! जिसे यम भी नहीं जीत सकता उसे हम कैसे जीत सकते हैं। युधिष्ठिर की आशंका गलत भी नहीं थी, क्योंकि स्वयं श्रीकृष्ण भी उससे बचने के लिए मथुरा को छोड़ गए थे। लेकिन श्रीकृष्ण के समझाने पर युधिष्ठिर अपने दोनों भाई भीम और अर्जुन को यह कहते हुए श्रीकृष्ण के साथ भेज देते हैं—'**वयम् आश्रत्य गोविन्दं यताम: कार्यसिद्धये।**' ऐसे ही कुछ भाव पाण्डवों की माता कुन्ती ने श्रीकृष्ण के सामने प्रकट किए। दुर्योधन को समझाने का प्रयास जब असफल हो गया, युद्ध अनिवार्य हो गया तब लौटते समय श्रीकृष्ण माता कुन्ती से मिले। कुन्ती ने अपने पुत्रों के लिए वीरोचित सन्देश दिया, द्रौपदी के प्रति स्नेह प्रकट किया और अन्त में कहा—"कृष्ण मेरे पुत्र तेरे पास मेरी धरोहर है, उनकी रक्षा करना।"

श्रीकृष्ण ने गीता में 'योग: कर्मसु कौशलम्' कहकर कर्म की कुशलता को ही योग कहा है। यह कर्म कुशलता श्रीकृष्ण के जीवन में पूर्णत: ओतप्रोत थी इसलिए उन्हें योगिराज श्रीकृष्ण कहते हैं। कंस के कारागार में जन्म लेकर बालपन में ही माता-पिता के लाड-प्यार से वञ्चित होना पड़ा। भीषण कष्ट भोग रहे माता-पिता के प्रतिशोधी

संस्कार, दूसरे विगत कई जन्मों की योगसाधना से प्राप्त दिव्य विभूतियाँ इन दोनों के विलक्षण संयोग का परिणाम था श्रीकृष्ण का विराट् व्यक्तित्व। उनके हृदय में अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध एक प्रचण्ड आग धधकती रहती थी, लेकिन आत्मसंयम ऐसा कि कंस वध से दो पल पूर्व किसी को पता नहीं कि क्या होने वाला है। श्रीकृष्ण ने जो भी युद्ध किये, केवल अन्याय व अत्याचार के विरुद्ध किये। राज्य पर अधिकार करने की लालसा कहीं नहीं दिखी। कंस को मारकर उसके पिता उग्रसेन को राजगद्दी पर बिठाया तो उधर जरासंध का वध करके उसके पुत्र का राजतिलक करके खाली हाथ लौट आए। कंस वध के बाद श्रीकृष्ण शिक्षा के लिए संदीपनि ऋषि के आश्रम में गए। वहाँ 36 वर्ष की आयु तक व्याकरण व वेदशास्त्रों का गहन अध्ययन किया। श्रीकृष्ण के पावन चरित्र और विमल यश को सुनकर राजकुमारी रुक्मिणी इन्हें अपने पति रूप में वरण कर चुकी थी। जब उसके सामने धर्मसंकट आया तो श्रीकृष्ण ने वीरोचित ढंग से विवाह तो कर लिया, मगर वे जानते थे कि वेदों के अनुसार सर्वोत्तम ब्रह्मचर्य 48 वर्ष का माना जाता है। इसके लिए इन्होंने पत्नी को साथ लेकर हिमालय की कन्दराओं में 12 वर्ष तक ब्रह्मचर्य पूर्वक तप किया। महाभारत में आता है—

ब्रह्मचर्य महद्घोरं तीर्त्वाद्वादश वार्षिकम्।
हिमवत्पार्श्व अभ्येत्य यो मया तपसाजितः॥
समानव्रतचारिण्यां रुक्मिण्यां योऽन्वजायः।
सनत्कुमारसम् तेजस्वी प्रद्युम्नो नाम ते सुतः॥

श्रीकृष्ण कहते हैं—हिमालय की गोद में मैंने और रुक्मिणी ने 12 वर्ष तक कठोर ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करते हुए जो तप किया था, उसी का परिणाम था कि हमें सनत्कुमार के समान प्रद्युम्न नाम का तेजस्वी पुत्र मिला। कैसा विचित्र विरोधाभास है कि भागवत पुराण का कृष्ण पर स्त्रियों के साथ मटकी फोड़ बइंया मरोड़ जैसी अश्लील हरकतें करता है, रास रचाता है, कपड़े चुराता है और महाभारत का कृष्ण अपनी विवाहित पत्नी के साथ 12 वर्ष तक कठोर ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करते हुए तपस्या करता है। भागवत पुराण के लेखक पं० बोबदेव ने सदाचार से हीन, वासना से कुण्ठित भाव-ग्रन्थियों को श्रीकृष्ण जैसे संयमी, सदाचारी और पावन पुरुष के नाम से परोसकर भारत का ही नहीं सम्पूर्ण मानवता का जितना अहित किया है, उतना किसी दूसरे पुरुष ने किसी दूसरे ढंग से नहीं किया। हमें पुराणों के इस मिथ्या प्रपञ्च से निकलकर महर्षि व्यास ने महाभारत में उनके जिस निष्कलंक चरित्र का चित्रण किया है, उसे स्वीकार करना होगा।

गीता में योगिराज श्रीकृष्ण कहते हैं—'**मद्भक्तं एतत् विज्ञेय मदभावाय उपपद्यते**' (13.18) अर्थात् मेरे भक्त इतना जान लें कि वे मेरे भावों को प्राप्त हों, यानि जैसा मैं हूँ वैसे बनें। रामायण लिखने का उद्देश्य प्रकट करते हुए वाल्मीकि जी लिखते हैं—'**रामादिवत् प्रवर्तितव्यं न तु रावणादिवत्।**' उन्होंने कहा कि मैं चाहता हूँ कि आने वाली पीढ़ियाँ राम की तरह व्यवहार करें, रावण की तरह नहीं। विवेकशील बन्धुओ! हमारी वैदिक परम्परा '**असतो मा सद्गमय तमसो मा ज्योतिर्गमय**' की रही है। हमें बहुत गहराई से सोचना होगा कि जब श्रीकृष्ण स्वयं यह कहते हैं कि मेरे भक्त मेरे भावों को प्राप्त हों, तब हम पुराणकार के कृष्ण के भावों को स्वीकार करें या महाभारत के श्रीकृष्ण को? इसे दुर्भाग्य कहें या मानसिक पतन की हमने महाभारत के उज्ज्वल चरित्र वाले श्रीकृष्ण को भुलाकर, उनकी धर्मपत्नी रुक्मिणी को हटाकर उसके स्थान पर पुराणकार द्वारा कल्पित राधानाम की स्त्री को साथ जोड़कर एक ऐसे कृष्ण को जन-मन में बसा दिया जिसे सभ्य समाज स्वीकार नहीं कर सकता।

आज आवश्यकता है कि हम महाभारत के श्रीकृष्ण के महान् आदर्शों को जीवन में अपनाएँ। आज आवश्यकता है उस कृष्ण की, जो अन्याय व अत्याचार करने पर सगे मामा कंस को मारने में संकोच नहीं करता। आज हमें वह कृष्ण चाहिए, जो जरासंध जैसे प्रबल शत्रु को अपने नीति कौशल से खून की एक बूंद बहाए बिना उसके घर में जाकर समाप्त कर सके। आज हमारा आदर्श वह कृष्ण होना चाहिए जो परिवार व सगे-सम्बन्धियों के मोह से ग्रस्त होकर कर्त्तव्य से मुंह मोड़ने वाले जनमानस को गीता का ज्ञान देकर समझा सके कि सज्जन ही स्वजन है। अन्याय और अत्याचार करने वाले अथवा उनके पक्षधर कभी किसी के सगे नहीं होते। आज हमें ऐसा कृष्ण चाहिए जो दुष्ट दुर्योधन को सत्य स्वीकार न करने पर उसी की सभा में

शेष पृष्ठ 15 पर...

योगिराज श्रीकृष्ण

❑ प्राचार्य अभय आर्य, रोहतक

परमात्मा 'सोम' भी है और 'रुद्र' भी। वह जहाँ धर्मात्माओं को शान्ति देता है, वहीं दुष्टों को रुलाता भी है। वेदवेत्ता न्यायकारी, ईश्वर उपासक क्षत्रियों में ये दोनों गुण

पाए जाते हैं। श्रीराम की भांति श्रीकृष्ण में भी ये दोनों गुण थे। ऋषि दयानन्द की 'खण्डन-मण्डन' शैली इसी गुण का रूपान्तरित लिए हुए है, जो एक साधु में होना चाहिए। वास्तव में ऐसे क्षत्रिय और ऐसे साधु ही समाज में सुख, न्याय व ज्ञान का प्रकाश फैलाने के साथ-साथ दु:ख, अन्याय व अज्ञान के अंधेरे में फैलने नहीं देते। श्रीकृष्ण का वैदिक आदर्श इसीलिए भी चरम पर है कि वे क्षत्रिय धर्म का पालन करते हुए भी 'योगिराज' कहलाए। 'उपनिषद्' में वर्णित राजा आध्यात्मिक ज्ञान में निष्णात हैं, उस ज्ञान के अत्यन्त पिपासु भी हैं, लेकिन श्रीकृष्ण ही 'योगिराज' के रूप में ख्याति पाते हैं। शायद योग में इसी रुचि के चलते विधिवत् 'राजा' भी नहीं बनते। ऋषि विश्वामित्र संन्यासी होते हुए वेद की आज्ञा निभाते हुए स्वयं शस्त्र न उठाकर राम के माध्यम से अधर्म को नष्ट कर धर्म की स्थापना करवाते हैं। श्रीकृष्ण संन्यासी न होते हुए भी 'कौरवों' पर शस्त्र न उठाकर पाण्डवों के माध्यम से ही उनका संहार करवाकर 'धर्मराज्य' की स्थापना करवा रहे हैं। 'धर्म' की स्थापना के लिए 'कर्म' ही मुख्य है। ऋषि विश्वामित्र, योगिराज श्रीकृष्ण के बाद ऋषि दयानन्द भी इसी आदर्श से जुड़े हैं। पारिस्थितिक तन्त्र में 'कर्म' से च्युत न होने वाले इन तीनों महापुरुषों का विलक्षण और अनुकरणीय व्यक्तित्व है। यहाँ हम बात श्रीकृष्ण की कर रहे हैं।

उनके गुण-महाराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में जब सबसे पहले 'अर्घ्य' देने की बात आती है तो भीष्म जी श्रीकृष्ण का नाम सुझाते हैं। वे श्रीकृष्ण के गुणों का बखान करते हुए कहते हैं कि जैसे ग्रह-नक्षत्रों में सूर्य देदीप्यमान् होता है वैसे ही श्रीकृष्ण अपने तेज, बल, पराक्रम से उपस्थित सभी राजाओं के मध्य में देदीप्यमान् हो रहे हैं। ऐसा ही वर्णन तब मिलता है जब उन्होंने 'शान्तिदूत' बनकर कौरवों की सभा में प्रवेश किया। उस समय उन्होंने अपनी दिव्य कान्ति से सभी को आच्छादित कर दिया। उस समय उनकी तुलना सूर्य से व कौरवों की तारों से की गई है। जब वे वहाँ उपस्थित सिंहासन पर बैठे तो वहाँ उपस्थित भूपाल उनके यशोबल के कारण उनकी ओर टकटकी लगाये देखते रहे। श्रीकृष्ण की अग्रपूजा का विरोध करने वाले शिशुपाल को समझाते हुए भीष्म जी कहते हैं कि बड़े-बड़े सन्त-महात्माओं ने इनकी पूजा की है। इनमें वेद-वेदांगों का ज्ञान, दान, दक्षता, शौर्य, आत्मलज्जा, कीर्ति, बुद्धि, विनय, श्री, धैर्य, तुष्टि और पुष्टि, ये सभी गुण नित्य विद्यमान हैं।

विश्वविजेता श्रीकृष्ण-समस्त उपस्थित राजाओं के मध्य में उनकी अग्रपूजा होना, उनके राजाओं में अग्रणी होने का प्रमाण है। शिशुपाल के आक्षेपों का उत्तर देते हुए भीष्म कहते हैं कि राजाओं के उपस्थित समूह में एक भी राजा ऐसा नहीं है जो श्रीकृष्ण के तेज से परास्त न हो चुका हो। शिशुपाल के कुकृत्यों का वर्णन उपस्थित राजाओं के सम्मुख करते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं कि 'अश्वमेध यज्ञ' में उनके पिता द्वारा छोड़ा गया घोड़ा दुष्टात्मा शिशुपाल ने चुरा लिया था। वह अश्वमेध यज्ञ श्रीकृष्ण की वीरता, धर्मपरायणता, यश के सहारे ही तो रखा गया होगा? इतिहास सदा खोज मांगता है। 'महाभारत' के युद्ध के पश्चात् जब युधिष्ठिर को 'अश्वमेध' यज्ञ करने के लिए प्रेरित किया गया तो उन्होंने श्रीकृष्ण को कहा कि पाण्डव उनके दिए भोग को ही भोग रहे हैं। अत: श्रीकृष्ण ही इस यज्ञ की दीक्षा ग्रहण करें। लेकिन अन्त में श्रीकृष्ण की अनुमति से युधिष्ठिर ने स्वयं वह दीक्षा ग्रहण की। योग में उच्च गति होने के कारण जहां वे राजसिंहासन को ठुकराते रहे, वहीं धर्म की स्थापना के लिये सांसारिक संघर्षों से जूझते रहे। पांच हजार वर्षों बाद यह आदर्श अलग रूप में ऋषि दयानन्द में दिखाई दिया था। यही सच्चा वैदिक आदर्श है।

भीष्म के उद्गार-भीष्म जैसे योद्धा संसार के किसी भी युद्धोन्मुख योद्धा के सम्मुख लड़ने से विमुख नहीं हो सकते। अर्जुन शिव का सामना अडिग होकर करते हैं। लेकिन युद्धभूमि में प्राण हरने के भाव से श्रीकृष्ण को अपनी ओर बढ़ता देख भीष्म जी स्वयं को उनका दास

शेष पृष्ठ 16 पर....

पसन्द-नापसन्द का आधार—वेद

❑ भद्रसेन वेद-दर्शनाचार्य

पसन्द=अच्छा लगना और नापसन्द=जो अच्छा न लगे। साधारण से साधारण भी अपने भाव सामर्थ्य के अनुरूप

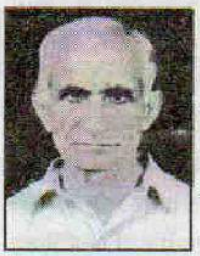

अभिव्यक्त कर देता है। वेद के अनुरूप अभिव्यक्ति स्पष्ट होती जाती है। जैसे-कोई बढ़ा होता है, तो उसको शैव-वैष्णव की भेदरेखा बनाई जाती है। जब कोई आंगन से गली में आता है, तो वहाँ धीरे-धीरे हिन्दू मुस्लिम का अन्तर भी सामने आने लगता है। स्कूल में स्थिति और भी स्पष्ट होने लगती है।

मूलशंकर एक शैव बालक था। अत: पिताजी ने तदनुरूप समझाना शुरू कर दिया। जैसे कि शिववन्दना के मन्त्र। मूलं ने जब चौदहवें वर्ष में प्रवेश किया तब शिवरात्रि आई। अत: पिताजी कथा में मूल को विशेष रूप से साथ लेकर गए जिससे उसको परम्परा का बोध हो। शैव-शिव का स्वरूप कैसा मानते हैं और व्रत कैसे रखा जाता है। दिनभर की दिनचर्या में क्या-क्या होता है? यह सब बालक ने सुना, 'बच्चे मन के सच्चे' के अनुसार सुने को यथार्थ समझा। व्रत के कारण जो घटना घटी, उसने मूल के मन में हलचल मचा दी। कथा में जो कहा जा रहा था, वैसा शिव क्यों नहीं है? इस विरोधाभास को जब पिताजी के समक्ष रखा तब असली-नकली की भेदरेखा की कल्पना बन एक नई उलझन उभर आई। तब मूल ने बालमन की सहजता, सरलता सामने लाकर अपनी पसन्द-नापसन्द प्रकट कर दी। अपना रास्ता आप छांटना शुरू कर दिया।

बहन और चाचा की मृत्यु ने युवा मन में एक नई उथल-पुथल मचा दी। इससे उनके जीवन में एक नया संकल्प पहले संकल्प के साथ आ जुड़ा। प्रत्येक प्रभावी से संकल्पों को साधने का रास्ता पूछा जाने लगा। जैसी-कैसी चलती पढ़ाई को विवाह के नाम पर रोका गया, तो युवा मूल ने नई दिशा पकड़ ली। इस नई पसन्द को पूरा करने के योग्य गुरु की गवेषणा प्रारम्भ हो गई। यह खोज लगातार चौदह वर्ष चली। इसके लिए जंगलों, पहाड़ों में बसते विशेषज्ञों के वासों को परखा। अन्त में ब्रह्मर्षि विरजानन्द जी दण्डी की पाठशाला पसन्द आई।

धर्म की धारणा-परिवार की परम्परा के आधार पर धर्म के प्रति अगस्था बद्धमूल हुई। जैसे-जैसे अपने शास्त्रों को पढ़ते गए, वैसे-वैसे धर्म का महत्त्व मन में दृढ़ हुआ। योग्य गुरु की खोज में जैसे-जैसे व्यावहारिक जीवन को जीना शुरू किया तब परस्पर विरोधी धर्मों के विचार तथा शास्त्र सामने आए। जब ब्रह्मर्षि गुरु विरजानन्द जी की विशेष प्रेरणा पर आर्षज्ञान की ज्योति जगमगाने का कर्त्तव्य प्रारम्भ हुआ। तब धर्म का एक सुनिश्चित स्वरूप निर्धारित करना आवश्यक हो गया।

ऐसी स्थिति में अपनी पसन्द-नापसन्द विरोधी धर्मों के विषय में साधार बताना आवश्यक हो गया। अत: पहले वेद को अपना मानने वाले धर्मों की समीक्षा एकादश समुल्लास में की। वहाँ उन्हीं के ग्रन्थों के आधार पर ही बताया कि मुझे कौन बात पसन्द है और कौन-सी बात नापसन्द क्यों है? विशेष करके प्राकृतिक पदार्थों जल, भूमि के विपरीत लिखने वालों की तीव्र समालोचना की। क्योंकि वे सबके सामने हैं। प्रत्यक्ष=स्पष्ट को प्रमाण=समझाने की जरूरत नहीं है, वह हू-बहू=यथार्थ में सामने है।

बारहवें में वेद को न मानने वाले चार्वाक-बौद्ध-जैन धर्म वालों की उनके शास्त्रों के उद्धरण देकर अपनी पसन्द और नापसन्द बताई कि इस कारण से यह बात जँचती नहीं है। तेरहवें समुल्लास में बाइबिल पर विचार-विमर्श किया उन दिनों भी बाइबिल हिन्दी रूपान्तरण सर्वसुलभ था। अत: उसको स्वयं पढ़ा, विचार कर अपना मत अभिव्यक्त करना सहजता से हो गया। कुरान अरबी में है और उर्दू भाषा में अनेक ने रूपान्तरण किये हैं। अपने समय अर्थात् 1874 से 82 तक जो उर्दू में रूपान्तरण मिलते थे, प्रचलित थे। उनका किसी उर्दू के जानकार से श्रवण किया। तदनन्तर चौदहवें समुल्लास में अपनी पसन्द और नापसन्द साधार दर्शाई है। अनेक मौलवी अपनी इच्छा से दूसरे धर्म में चले गए। उनमें से किसी ने भी सत्यार्थप्रकाश में उद्धृत उद्धरणों को अशुद्ध नहीं बताया है। अरबी भाषा के किसी विशेषज्ञ

शेष पृष्ठ 15 पर....

कृष्ण जन्माष्टमी एवं श्रावणी पर्व

❑ मनमोहन कुमार आर्य, 196 चुक्खूवाला-2, देहरादून-248001, मो० 9412985121

श्रावण का महीना वर्षा ऋतु का सबसे अधिक वर्षा वाला महीना होता है। आजकल तो देश में बड़े-बड़े नगर बस गये हैं। सुविधाजनक सड़के हैं व सड़कों पर विद्युत् से मिलने वाले प्रकाश की व्यवस्था है। नगरों व ग्रामों में भी बसे एवं कारें चलती हैं। एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने के लिए रेलगाड़ियों एवं वायुयान की सेवायें भी हैं, परन्तु प्राचीन काल में ऐसा नहीं था। तब हमारे देश में रथ होते थे। ऐसा अनुमान होता है कि वह घोड़ों से चलते थे। यांत्रिक रथ भी हो सकते हैं, परन्तु उनका विस्तार नहीं मिलता। वेदों के अध्ययन से प्रतीत होता है कि उनमें यान्त्रिक विमान, रथ व वाहन तथा समुद्रीय यान बनाने और देश-विदेश की यात्रा करने का उल्लेख है। प्राचीन काल में जब वर्षा होती थी तो नदियों में जल भरा होता था। वर्षा से लोगों का आवागमन अवरुद्ध हो जाता था। गांवों में तो आवागमन अत्यन्त कठिन होता होगा, ऐसा अनुमान होता है। प्राचीन साहित्य में ऐसे संकेत नहीं मिलते कि रामायण और महाभारत काल में भारत में फोन व मोबाइल की सेवायें उपलब्ध थी जैसी वर्तमान में है। अतः हमारे पूर्वज प्राचीन काल में वर्तमान की तरह का जीवन व्यतीत नहीं कर पाते होंगे। यह भी अनुमान है कि वह ऐसी कोई सुविधा नहीं चाहते थे जिससे सत्कर्मों व ईश्वर की प्राप्ति में बाधा आये, इसलिए वह तप व त्याग का जीवन जीना ही उचित मानते थे।

वर्तमान समय में अनेक सुविधायें होने के बावजूद देश के अनेक भागों में बाढ़ आ जाया करती है जिससे अनेक गांव व नगर प्रभावित होते हैं। अतः इन सब परिस्थितियों में हमारे मनीषी पूर्वज इन दिनों स्वाध्याय व विद्वानों के प्रवचन सुनने के लिए उपयुक्त अवसर जानकर पूरे माह विद्वानों के प्रवचनों का श्रवण करने सहित स्वाध्याय आदि किया करते थे। श्रावण मास के अन्तिम दिन पूर्णमासी को '**श्रावणी-पर्व**' का उत्सव मनाया जाता था। अनुमान से कह सकते हैं कि इस दिन बृहद् यज्ञ किये जाते थे और विद्वानों के द्वारा मनुष्यों को ईश्वर व जीवात्मा के स्वरूप व गुण, कर्म व स्वभाव का परिचय कराकर उन्हें जीवात्मा के जन्म-मरण व बन्धन और मोक्ष का ज्ञान कराया जाता था। पाप व पुण्य के विषय में भी बताया जाता था और पुण्य से जन्म जन्मान्तर में उन्नति और पाप से इस जन्म में दुःख व परजन्म में पतन के कारण दुःखों से ग्रस्त होने का ज्ञान कराया जाता था। यह भी ज्ञातव्य है कि प्राचीन काल में लोगों की आवश्यकतायें बहुत कम थी। कृषि से जो अन्न, शाक सब्जियां, फल तथा पशुपालन से जो गोदुग्धादि पदार्थ उपलब्ध होते थे उसी से मनुष्य सन्तुष्ट रहते थे। लोग अपना ध्यान भौतिक उन्नति में कम तथा आध्यात्मिक उन्नति में अधिक दिया करते थे। अब यह स्थिति उलटी हो गई है। वर्तमान में लोग सांसारिक उन्नति को अधिक महत्त्व देते हैं तथा आध्यात्मिक उन्नति की चिन्ता शायद किसी को नहीं है। कुछ आर्यसमाजी इसका अपवाद हो सकते हैं। वस्त्र व वेशभूषा भी बहुत साधारण होती थी। वेद और आयुर्वेद सहित विस्तृत वैदिक साहित्य के विद्वान् अधिक होते थे जिससे रोग हो जाने पर आयुर्वेदिक उपचार मिल जाया करता था। यज्ञ से पर्यावरण की शुद्धि, सामान्य जीवन, शुद्ध गोदुग्ध, शुद्ध अन्न व अन्य भक्ष्य पदार्थों के सेवन से मनुष्य रोगी तो अपवाद स्वरूप ही होतें थे। अतः इन सब कारणों से मनुष्यों का जीवन बहुत प्रसन्नता, सुख एवं सन्तुष्टि के साथ व्यतीत होता था। लोग वेद व शास्त्रों के अध्ययन तथा अपने कर्तव्यों वा धर्म के पालन में अधिक रुचि रखते थे। ऐसे ही समय में हमारे ऋषियों व विद्वानों ने श्रावणी पर्व का विधान किया था जिनका उलेख गृह्य सूत्रों में उपलब्ध होता है।

श्रावणी श्रावण मास की पूर्णिमा के दिन मनाया जाता है। इस दिन सभी वेद प्रेमियों को कुछ समय वेदों का स्वाध्याय करना चाहिये। इस वर्ष यह पर्व रविवार दिनांक 22.08.2021 को सम्पन्न हुआ है। इस अवसर पर निकटवर्ती किसी स्थान पर जहां श्रावणी पर्व मनाया जा रहा हो और वेदकथा, व्याख्यान एवं यज्ञ आदि हो रहा हो, तो उसमें सम्मिलित होना चाहिये। समय निकालकर सत्यार्थप्रकाश के सातवें समुल्लास का पाठ करना चाहिये। हमारे पास सत्यार्थप्रकाश का आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का प्रचार संस्करण है। इसमें कुल 25 पृष्ठ हैं। इसे लगभग 2 या ढाई घंटे में पढ़ा जा सकता है। इससे ईश्वर, जीव व वेद विषयक अनेक नूतन बातों का ज्ञान होने सहित इन विषयों से संबंधित सभी शंकाओं का निवारण भी होता है। इस समुल्लास के स्वाध्याय से इसके पाठकों में वेद प्रचार करने की क्षमता का विकास भी होगा। अतः सत्यार्थप्रकाश के स्वाध्याय को श्रावणी पर्व मनाने का आधुनिक तरीका कह सकते हैं। इस कार्य को संकल्पपूर्वक करना चाहिये। कुछ लोग इस दिन को रक्षाबन्धन के नाम से मनाते हैं। जहां जो लोग इस पर्व को मनाते हैं, वह इसे मना सकते हैं। इसे मनाने

से भी परिवारों में सौहार्द उत्पन्न होता है। सभी वैदिक धर्मियों को इस दिन अपने निवास पर यज्ञ अवश्य करना चाहिये और अर्थाभाव वाले वैदिक गुरुकुलों को कुछ धनराशि दान भी देनी चाहिये।

आर्य पर्व पद्धति में कहा गया है कि आर्य पुरुषों को उचित है कि श्रावणी पर्व के दिन बृहद् हवन और विधिपूर्वक उपाकर्म करके वेद और वैदिक ग्रन्थों के विशेष स्वाध्याय का उपाकर्म करें और उस को यथाशक्ति और यथावकाश नियमपूर्वक चलाते रहें। हम यहां शतपथ ब्राह्मण के 11/5/7/1 वचन का हिन्दी भावार्थ भी प्रस्तुत कर रहे हैं। इसमें स्वाध्याय की प्रशंसा करते हुए कहा गया है कि स्वाध्याय करने वाला सुख की नींद सोता है, वह युक्तमना होता है, अपनी कायिक, मानसिक व इतर सभी समस्याओं का परम चिकित्सक होता है, स्वाध्याय से इन्द्रियों का संयम और एकाग्रता आती है और प्रज्ञा की अभिवृद्धि होने से विद्या की प्राप्ति होती है। श्रावणी पर्व के दिन यज्ञ करने के साथ पुराने यज्ञोपवीत का त्याग करने व नये यज्ञोपवीत को धारण करने की भी परम्परा है। इसका भी निर्वहन किया जाना चाहिये। यज्ञोपवीत का अपना महत्त्व है। शिवाजी महाराज ने राज्याभिषेक के अवसर पर यज्ञोपवीत धारण करने के लिए करोड़ों रुपये व्यय किये थे। यज्ञोपवीत के तीन धागे गले में पढ़ते ही पितृऋण, देवऋण तथा ऋषिऋण से जुड़े कर्तव्यों की याद दिलाते हैं। जिस देश में श्रावणी पर्व पर यज्ञोपवीत बदलने व धारण करने की परम्परा होगी तथा जहां वेदों का स्वाध्याय किया जायेगा, वहां मनुष्य अपने तीन ऋणों को स्मरण कर कभी वेद विमुख, नास्तिक व मिथ्या मत-मतान्तरों में नहीं फंसेंगे। अत: श्रावणी पर्व को स्वाध्याय, यज्ञ व यज्ञोपवीत परिवर्तन के साथ व वेदोपदेश आदि का श्रवण करने सहित सत्यार्थप्रकाश के सातवें समुल्लास के अध्ययन का व्रत लेकर मनाया जाना चाहिये।

श्रावणी पर्व के आठवें दिन कृष्ण जन्माष्टमी का पर्व मनाया जाता है। सुदर्शन चक्रधारी योगेश्वर कृष्ण वैदिक भारतीय संस्कृति के गौरव हैं। कृष्ण जी का जन्म मथुरा नगरी में हुआ था। महाभारत युद्ध के वह प्रमुख नायक थे। पाण्डव कुल के युधिष्ठिर, अर्जुन आदि ने अन्याय व अत्याचार के विरुद्ध कृष्णजी के नेतृत्व में महाभारत का युद्ध लड़ा था। इस युद्ध में अनेक अवसरों पर पाण्डवों के सम्मुख अनेक समस्यायें एवं संकट आये जिन सबका समाधान श्री कृष्ण जी ने अपनी प्रखर विवेक बुद्धि से किया। कृष्ण जी ईश्वरभक्त, वेदभक्त, योगी, युद्ध विद्या के मर्मज्ञ, अपराजेय योद्धा, सत्य के पुजारी, देशभक्त व देशरक्षक, अन्याय एवं अधर्म के विरोधी तथा वैदिक धर्म एवं संस्कृति के अनुयायी व रक्षक थे। कृष्ण जी अस्त्र शस्त्र की शिक्षा प्राप्त करने पर क्षत्रिय समाज में सर्वश्रेष्ठ वीर समझे जाने लगे थे। उन्हें कभी कोई परास्त न कर सका। कंस, जरासंघ, शिशुपाल आदि तत्कालीन प्रधान योद्धाओं से तथा काशी, कलिंग, गांधार आदि राजाओं से वे लड़ गए और उन्होंने उन सब को पराजित किया था। महाभारत युद्ध में भीष्म पितामह, गुरु द्रोणाचार्य एवं कर्ण आदि योद्धाओं ने पाण्डव पक्ष में भारी तबाही मचाई थी। जयद्रथ ने धर्म व युद्ध नियमों के विरुद्ध अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु का वध किया था। इन सबका कृष्ण जी ने अपनी बुद्धि-चातुर्य से समाधान किया था। श्रीकृष्ण जी ने अर्जुन के द्वारा रणभूमि में कौरवपक्ष के प्रमुख योद्धाओं को धराशायी किया था अन्यथा महाभारत युद्ध का परिणाम धर्म में स्थित पाण्डवों के पक्ष में नहीं हो सकता था। महाभारत युद्ध में पाण्डवों की विजय का यदि किसी एक पुरुष को श्रेय देना हो तो वह योगेश्वर कृष्ण ही हैं। सात्यकि और अभिमन्यु उनके शिष्य थे। यह दोनों भी किसी शत्रु से सहजता से हारने वाले नहीं थे। अर्जुन ने भी युद्ध की अनेक गहन बातों का अध्ययन कृष्णजी से ही किया था।

आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश में श्रीकृष्ण जी की प्रशंसा करते हुए लिखा है "देखो! श्री कृष्ण जी का इतिहास महाभारत (प्रसिद्ध इतिहास ग्रन्थ) में अत्युत्तम है। उनके गुण कर्म-स्वभाव और चरित्र आप्त पुरुषों के सदृश हैं। महाभारत में श्रीकृष्ण जी ने जन्म से मरण-पर्यन्त अधर्म का कोई बुरा कुछ भी आचरण किया हो ऐसा नहीं लिखा और इस भागवत वाले ने (उन पर) मनमाने अनुचित दोष लगाए हैं। दूध, दही, मक्खन आदि की चोरी लगाई और कुब्जा दासी से समागम, पर-स्त्रियों से रास मंडल क्रीड़ा आदि मिथ्या दोष श्रीकृष्ण जी में लगाए हैं। इसको पढ़-पढ़ा व सुन-सुना के अन्यमत वाले श्रीकृष्ण जी की बहुत-सी निन्दा करते हैं। जो यह भागवत (पुराण) न होता तो श्रीकृष्ण जी के सदृश महात्माओं की झूठी निन्दा क्योंकर होती?" महर्षि दयानन्द के इन शब्दों के अनुसार भागवत पुराण के रचयिता ने कृष्ण जी के उज्ज्वल चरित्र का हनन किया है। आश्चर्य है कि हमारे कुछ सनातनी बन्धु उसी को महत्त्व देते हैं।

बकिंग चन्द्र चट्टोपाध्याय ने भी कृष्णजी के उज्ज्वल चरित्र एवं व्यक्तित्व के विषय में लिखा है। उनके अनुसार

शेष पृष्ठ 16 पर....

होमियोपैथी चिकित्सा से हृदय रोग का उपचार

❑ डॉ० विद्याकान्त त्रिवेदी (होमियोपैथिक चिकित्सक) मोबा० 7000236213, 9425515336

हृदय रोग-आज विश्व में सबसे घातक कोई रोग तेजी से बढ़ता नजर आ रहा है तो वह है हृदय रोग। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार वर्ष 2020 तक भारत में पूरे विश्व की तुलना में सर्वाधिक हृदय के रोगी होंगे। हमारे देश में प्रत्येक वर्ष लगभग एक करोड़ लोगों को दिल का दौरा पड़ता है। मनुष्य का हृदय एक मिनट में तकरीबन 70 बार धड़कता है। चौबीस घण्टों में 10,800 बार। इस तरह हमारा हृदय एक दिन में तकरीबन 2000 गैलन रक्त का पम्पिंग करता है। स्थूल दृष्टि से देखा जाये तो यह मांसपेशियों का बना एक पम्प है। ये मांसपेशियाँ संकुचित होकर रक्त को पम्पिंग करके शरीर के सभी भागों तक पहुँचाती हैं। हृदय की धमनियों में चर्बी जमा होने से रक्त प्रवाह में अवरोध उत्पन्न होता है जिससे हृदय को रक्त कम पहुँचता है। हृदय को कार्य करने के लिए ऑक्सीजन की मांग व पूर्ति के बीच असंतुलन होने से हृदय की पीड़ा होना शुरू हो जाता है। इस प्रकार के हृदय रोग का दौरा पड़ना ही अचानक मृत्यु का मुख्य कारण है।

हृदय रोग के कारण-युवावस्था में हृदय रोग होने का मुख्य कारण अजीर्ण व धूम्रपान है। धूम्रपान न करने से हृदय रोग की सम्भावना बहुत कम हो जाती है। फिर भी उच्च रक्तचाप ज्यादा चर्बी व कोलेस्ट्रोल अधिक होना, अति चिंता करना और मधुमेह भी इसके कारण हैं। मोटापा, मधुमेह, गुर्दों की अकार्य क्षमताएँ, रक्तचाप, मानसिक तनाव, अति परिश्रम, मल-मूत्र की हाजत को रोकने तथा आहार-विहार में प्राकृतिक नियमों की अवहेलना से ही रक्त में वसा का प्रमाण बढ़ जाता है। अत: धमनियों को कोलेस्ट्रोल के थक्के जम जाते हैं, जिससे रक्त प्रवाह का मार्ग तंग हो जाता है। धमनियाँ कड़ी और संकीर्ण हो जाती हैं।

हृदय रोग के लक्षण-छाती में बायीं ओर या छाती के मध्य में तीव्र पीड़ा होना या दबाव-सा लगना, जिसमें कभी पसीना भी आ जाता है और श्वांस तेजी से चल सकता है। कभी ऐसा लगे कि छाती को किसी ने चारों ओर से बांध दिया है अथवा छाती पर पत्थर रखा हो। कभी छाती के बाएं या मध्य भाग में दर्द न होकर शरीर के अन्य भागों में दर्द होता है, जैसे कि कंधे में, बाएँ हाथ में, बायीं ओर गरदन में, नीचे के जबड़े में, कोहनी में या कान के नीचे वाले हिस्से में।

कभी पेट में जलन, भारीपन लगना, उल्टी होना, कमजोरी-सी लगना, ये तमाम लक्षण हृदय रोगियों में देखे जाते हैं। कभी कभार इस प्रकार का दर्द काम करते समय, चलते समय या भोजनोपरान्त भी शुरू हो जाता है, पर शयन करते ही स्वस्थता आ जाती है। किन्तु हृदय रोग के आक्रमण पर आराम करने से भी लाभ नहीं होता। मधुमेह के रोगियों को बिना दर्द हुए भी हृदय रोग का आक्रमण हो सकता है।

• **हृदय रोग की प्रमुख होमियो औषधियाँ**-एकोनाइट, ब्रायोनिया, स्पाइजेलिया, नेट्रम सल्फ, क्रेटिगस, आर्निका, फेरम फास, मैग्निशिया फास, आर्सेनिक, ग्लोनाइट आदि औषधियाँ अनुभवी चिकित्सक से परामर्श कर ली जा सकती है। होमियो उपचार कई रोगी उपचार कराकर ठीक हो गए हैं। कई रोगियों का उपचार चल रहा है। होमियो औषधियाँ हृदय की गति को सामान्य कर देती है।

पथ्य-हृदय रोगियों को अंगूर व नींबू का रस, गाय का दूध, जौ का पानी, कच्चा प्याज, आँवला, सेब आदि। छिलके वाले साबुत उबले हुए मूँग की दाल, गेहूँ की रोटी, जौ का दलिया, परवल, करेला, गाजर, लहसुन, अदरक, सोंठ, हींग, जीरा, कालीमिर्च, सेंधानमक, अजवायन, अनार, मीठे अंगूर, काले अंगूर आदि।

अपथ्य-चाय, कॉफी, घी, तेल, मिर्च मसाले, दही, पनीर, मावे, खोया से बनी मिठाइयाँ, टमाटर, आलू, गोभी, बैंगन, मछली, अंडा, मांसाहार, फास्टफूड, ठंडा बासी भोजन, भैंस का दूध व घी, फल, भिण्डी, गरिष्ठ पदार्थों के सेवन से बचें। धूम्रपान न करें। मोटापा मधुमेह व उच्च रक्तचाप आदि को नियंत्रित रखना चाहिए।

संपर्क-त्रिवेदी क्लीनिक, भारतमाता विद्यालय के सामने, टाटीबन्ध, रायपुर (छ०ग०)

साभार—हिन्दी मासिक 'अग्निदूत'

श्रीकृष्ण—जीवन और...पृष्ठ 9 का शेष...

खड़ा होकर फटकार सके। क्या पवित्र सदाचार था। श्रीकृष्ण, कितना महान् था उसका व्यक्तित्व और हमने उसे क्या बना दिया? कुछ लोग श्रीकृष्ण को युद्धप्रिय कहते हैं। उनका मानना है कि श्रीकृष्ण का सारा जीवन लड़ने-लड़ाने में ही गया। कभी किसी ने उनके हृदय में झांककर मानवीय करुणा के दर्शन नहीं किए। दुर्योधन को समझाते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं—"भाई! एक महान् कुल में पैदा हुए हो, विद्वान् हो, वीर हो, फिर शील क्यों कुलहीनों जैसा दिखाते हो। भाइयों से व्यर्थ कर वैर और पराये लोगों के सहारे इतना गर्व? युद्ध हुआ तो तुम्हें सभी कुलघातक कहेंगे।" जब वह न माना तो श्रीकृष्ण ने भरी सभा में धृतराष्ट्र से जो प्रार्थना की, वह विश्वइतिहास की अमूल्य धरोहर है। श्रीकृष्ण कहते हैं—"इस समय भारतवर्ष में आपका कुल विद्याशील, दयालुता, सरलता व सत्य व्यवहार के लिए सर्वश्रेष्ठ है। वृद्ध होने से आप इसके आधार हैं, परन्तु आपकी सन्तान बिगड़ रही है। विमल आचार के निष्कलंक आर्य लोग आपस में लड़कर मर जायेंगे। इन्हें बचाइये महाराज! पाण्डव भी तो आपके लिए ही हैं, बचपन से आपके पास ही पले हैं, वही स्नेह दृष्टि में रखिए।" थोड़ी कठोरता दिखाते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं कि इस दुराचारी दुष्ट को दुःशासन, कर्ण और शकुनि के साथ पाण्डवों को सौंप दो या मार डालो। एक की दुष्टता का परिणाम सारा संसार क्यों भोगे? हमारे कुल में कंस ऐसा ही हुआ था, हमने मार डाला। दुष्टता के सामने शिष्टता जब निराश हो गई तो अपनी करुणा भरी व्यथा महात्मा विदुर जी के सामने रखते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं—"दुर्योधन की दुष्टता का मुझे ज्ञान है, परन्तु मैं सारी पृथ्वी को रक्त में सनी हुई नहीं देख सकता। संसार पर कैसी भयंकर विपत्ति आएगी, ऐसे में करोड़ों लोगों को मृत्यु के मुंह से खींच लेना बड़ा पुण्य का काम होगा। जो मित्र को संकट का शिकार होते देखकर नहीं बचाता वह क्रूर है।"

ये हैं श्रीकृष्ण के हृदय की करुणा। उनका बुद्धि कौशल महाभारत युद्ध से स्पष्ट सबके सामने है। श्रीकृष्ण का ऐसा पावन आदर्श हम स्वयं स्वीकार करें और सबके सामने भी रखें। (साभार-टंकारा समाचार)

पसन्द-नापसन्द का आधार..पृष्ठ 11 का शेष...

ने सत्यार्थप्रकाश के रूपान्तरण को दोषयुक्त नहीं बताया है। हाँ, महर्षि दयानन्द ने इस समुल्लास की अनुभूमिका में लिखा है कि उर्दू अनुवाद के आधार पर यह समीक्षा की है। अतः वह अनुवाद ही पहले विवेचना का विषय बनाया जाना चाहिए। महर्षि दयानन्द को वेदों पर पूर्ण विश्वास था। वह वेदों का सब सत्य विद्या का पुस्तक मानते थे। बड़ी दृढ़ता के साथ महर्षि लिखते हैं कि हम अल्पज्ञों को पूर्ण सर्वज्ञ परमेश्वर की बात=वेद की आज्ञा को सदा सर्वथा स्वीकार करना चाहिए। किसी विशेषज्ञ की बात को मानना सभी के लिए हितकर होता है। ईश्वर सबसे बड़ा विशेषज्ञ है। अतः उसका वेद और अपना दिल, हृदय सच्चाई को समझने के साक्षी हैं। संपर्क-B-2, 92/7B, शालीमार नगर, जिला होशियारपुर (पंजाब)

'आर्य प्रतिनिधि' पाक्षिक पत्रिका सदस्यता आवेदन-पत्र

(नाम, पता तथा पिन-कोड, फोन नम्बर, निम्न फार्म में साफ-साफ अक्षरों में लिखकर भेजें।)

नाम..... उम्र..... दिनांक.....

पता.....

शहर..... राज्य..... पिन..... फोन.....

मोबाइल नं०..... मनीआर्डर/डी.डी. नम्बर..... रुपये.....

ड्राफ्ट/मनीऑर्डर 'आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा, रोहतक' के नाम से कार्यालय आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा दयानन्दमठ रोहतक-124001 अथवा पंजाब नेशनल बैंक शाखा झज्जर रोड रोहतक में सीधे खाता क्र० 0406000100426205 IFSC Code PUNB0040600 में जमा कराएँ तथा इसकी सूचना सभा कार्यालय के मोबाइल नंबर 8901387993 पर देकर सूचित करें।

श्रीकृष्ण जन्माष्टमी एवं.... पृष्ठ 13 का शेष.....

'श्रीकृष्ण आदर्श मनुष्य थे। मनुष्य का आदर्श प्रचारित करने के लिए उनका प्रादुर्भाव हुआ था। वे अपराजेय, अपराजित, विशुद्ध, पुण्यमय, प्रेममय, दयामय, दृढ़कर्मी, धर्मात्मा, वेदज्ञ, नीतिज्ञ, धर्मज्ञ, लोकहितैषी, न्यायशील, क्षमाशील, निर्भय, अहंकारशून्य, योगी और तपस्वी थे। वे मानुषी शक्ति से काम करते थे परन्तु उन में देवत्व अधिक था। पाठक अपनी बुद्धि के अनुसार ही इस का निर्णय कर लें कि जिस की शक्ति मानुषी पर चरित्र मनुष्यातीत था, वह पुरुष मनुष्य या देव था।' श्री कृष्ण जी न केवल भारत अपितु विश्व के अद्वितीय गौरवमय महापुरुष थे। उन्होंने युद्ध भूमि में अर्जुन का विषाद दूर किया था और उसे अपने कर्तव्य क्षत्रियोचित कर्तव्य पर आरूढ़ किया था। इसका परिणाम यह हुआ कि महाभारत के युद्ध में कौरवों का असत्य पक्ष पराजित हुआ और पाण्डवों के सत्यपक्ष की विजय हुई। गीता के नाम से प्रचलित कृष्ण-उपदेश वा गीता ग्रन्थ में बहुतसी अच्छी बातें हैं, उन्हें भी पढ़ा जा सकता है। आर्यसमाज के अनेक शीर्ष विद्वानों ने महाभारत के आधार पर श्रीकृष्ण जी के जीवन चरित लिखे हैं। इनमें पं. चमूपति, लाला लाजपतराय, डॉ. भवानीलाल भारतीय आदि के जीवन चरित महत्त्वपूर्ण हैं जिन्हें सबको पढ़ना चाहिये। पं. सन्तराम रचित शुद्ध महाभारत भी पढ़ने योग्य ग्रन्थ है। सम्भवत: अब यह अनुपलब्ध है। स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती जी ने भी एक विशालकाय शुद्ध ग्रन्थ महाभारत का सम्पादन किया था जो वैदिक साहित्य के आर्य प्रकाशक 'विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द, दिल्ली' से उपलब्ध होता है। यह सभी ग्रन्थ पठनीय हैं। इन ग्रन्थों की शिक्षा से देश की युवा पीढ़ी के ज्ञान में वृद्धि सहित उनके चरित्र निर्माण में सहायता मिलेगी और वैदिक धर्म की भी रक्षा हो सकेगी।

आर्यसमाज मानसरोवर कॉलोनी रोहतक में मुख्यवक्ता के रूप में उद्बोधन देते हुए आचार्य श्री वेदमित्र जी एवं सभा के भजनोपदेशक श्री सत्यपाल 'मथुर'।

स्वतन्त्रता दिवस समारोह सम्पन्न

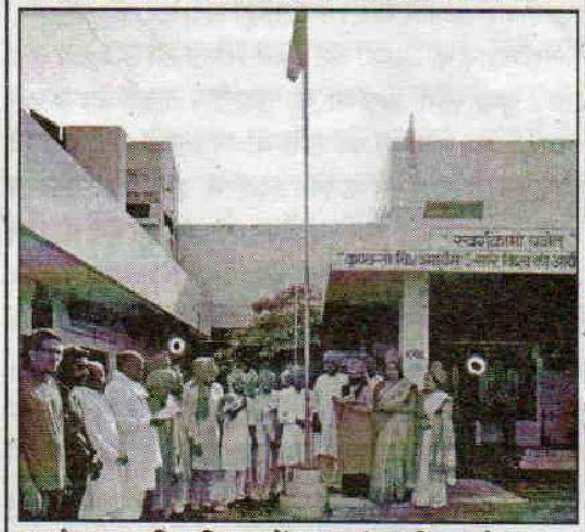

आर्यसमाज मन्दिर सिरसा में 75स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर श्री अशोक वर्मा ने तिरंगा झण्डा फहराया। आर्यसमाज के संरक्षक श्री जगदीश सिंवर शेखुपुरिया ने आए हुए सभी आर्यसमाजियों में का धन्यवाद किया और कहा कि देश की आजादी कराने के में 75 प्रतिशत आर्यसमाज का योगदान था। इस मौके पर आर्यसमाज के पुरोहित राजकुमार ने राष्ट्रहित के लिए मंत्र उच्चारण किया। इस मौके पर राजेंद चाडीवाल, सुरेश शेरडिया, कुलदीप आर्य, ओमप्रकाश आर्य, बालचंद आर्य, विमला सिंवर, उर्वशी अररिया, किरण अररिया, समशेर सिंह, रामू आदि मौजूद थे।

योगिराज श्रीकृष्ण..... पृष्ठ 10 का शेष.....

बताकर अपने ऊपर उन्हें स्वेच्छा से प्रहार करने के लिए आमन्त्रित करते हैं। हम तो इसका कारण क्षत्रिय वीर होने के साथ-साथ योग में उनकी गति को मानते हैं। इसी कारण वे भीष्म के भी पूजनीय हैं।

क्या सीख लें? ऐसे वीरों के चरित्र ऋषि के उन आदर्शों का मूर्त्तरूप है जिनमें अन्यायकारी की हानि और धर्मात्मा की रक्षा को मनुष्य धर्म माना है। गृहस्थ के कार्यों से अवकाश के समय तन-मन-धन से सत्यधर्म की उन्नति की सीख है। असत्य ग्रन्थों व असत्य सिद्धान्तों का खण्डन न करने वाले नामधारी संन्यासियों को भाररूप माना गया है। अत: सत्य का मण्डन और असत्य का खण्डन यही सबके लिए कल्याणकारी धर्म है। चाहे कोई गृहस्थ है या साधु है।

मही यज्ञस्य रप्सुदा।

यज्ञ की महान् उपयोगिता है।

प्रेषक :
मन्त्री
आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा
दयानन्द मठ, रोहतक
हरियाणा, 124001

श्री .....

पता .....

.....

आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा (रजि.) के स्वामित्व में मुद्रक, प्रकाशक उमेद शर्मा ने दुर्गेश्वरी प्रिंटर्स के लिए आचार्य प्रिंटिंग प्रेस, रोहतक से मुद्रित एवं कार्यालय, सिद्धान्ती भवन, दयानन्दमठ रोहतक-124001 से प्रकाशित।
- सम्पादक उमेद शर्मा